छहढाला

(पं. दौलतरामजी कृत)

मंगलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।१।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आप को भरमत बादि।।२।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।३।।
एक श्वास में अठ-दश बार, जन्म्यो-मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर।।५।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।६।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम-आतप त्रास।।७।।
बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‌यो घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो।।८।।
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।९।।

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोग तैं नरगति लहै।।१२।।

जननी उदर बस्यो नव मास, अंग-सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत-रह्यौ।
अर्द्धमृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।१६।।

दूसरी ढाल

(पद्धरि छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण-वश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन, तिन संक्षेप कहूँ बखान।।१।।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप।।२।।

पुद्गल-नभ-धर्म-अधर्म-काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान।।३।।

मैं सुखी-दुखी मैं रंक-राव, मेरो धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।४।।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन।।५।।

शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद बिसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान।।६।।

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान।।७।।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।८।।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।९।।

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन।।१०।।

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान।।१२।।

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।१३।।

जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देह-दाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।१४।।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।१५।।

तीसरी ढाल

(जोगीरासा/नरेन्द्र छन्द)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिए।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो।।१।।
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई।।२।।
जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो।।३।।
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।४।।
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिव मगचारी।।
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।५।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै।।६।।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।।७।।
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानों।
नियत वर्तना निस-दिन सो, व्यवहारकाल परमानों।।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।८।।
ये ही आतम को दुख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये।।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये।।९।।
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो।।१०।।
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये।।११।।
जिन-वच में शंका न धार, वृष भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।।
निज-गुण अरु पर-औगुण ढाँके, वा जिन धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सुदिढ़ावै।।१२।।
धर्मी सों गौ-बच्छ प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै।।

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन-बल कौ मद भानै।।१३।।
तप कौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै।।
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्है न नमन करै है।।१४।।
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।१५।।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।।
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।१६।।
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मलिन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

चौथी ढाल

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान।।१।।

(रोला)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।२।।

तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माहीं।
मति-श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं।।
अवधि मनपर्जयज्ञान, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा।।३।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानैं एकै काल प्रकट, केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान-समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण।।४।।
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।।५।।
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व-अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी।।६।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।।७।।
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै।।८।।
पुण्य-पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।

लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।९।।
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै।।१०।।
जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सों रहे विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन-प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै।।११।।
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषी तैं।।१२।।
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै।।
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै।।१३।।
धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।।१४।।
बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर-जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।१५।।

पाँचवी ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतो अनुप्रेक्षा भाई।।१।।
इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव-सुख ठानै।।२।।
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावे कोई।।४।।
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार-असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा।।५।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।
जल-पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।८।।
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।९।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।

किन हू न कर्‌यो न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।
जे भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

छठवीं ढाल

(हरिगीतिका)

षट् काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठ-दश सहस विधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।।१।।
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्य्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।२।।
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहैं लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं।।३।।
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।४।।

समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिनदेव को।
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन।।५।।
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में।।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन।।६।।
तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख-कदा।।
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब।।७।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निज माहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यौ।।८।।
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा।।९।।
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै।।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनि तैं।।१०।।
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ।।
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कह्यौ।।११।।

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।१२।।
निज माहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।१३।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ।।१४।।
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै।।१५।।

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव-कूल।।१६।।

****